© 2019 IJSRST | Volume 6 | Issue 1 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

प्रमुख आधुनिक आचार्यों की दृष्टि में काव्यप्रयोजन

डॉ. शान्ति लाल सालवी (सहायक आचार्य)
साहित्य विभाग,
संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

हम सभी जानते हैं कि अनुबन्ध चतुष्ट्य में अधिकारी, विषय, सम्बन्ध और प्रयोजन की गणना की जाती है। इस अनुबन्ध चतुष्ट्य में प्रयोजन का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि प्रयोजन ही प्रवृत्ति का कारण होता है–"प्रयोजनं विना मन्दोऽपि न प्रवर्तते।"

प्राचीनकाल से ही आचार्यों में काव्य–प्रयोजन के सम्बन्ध में चिन्तन एवं मनन चलता आ रहा है। आचार्यों ने प्रायः कवि एवं काव्य–रसिक के प्रयोजनों में एकरूपता स्वीकार की है।

आचार्य भरत[i] ने काव्य का प्रमुख प्रयोजन धर्म, यश, आयु एवं सुख की प्राप्ति, बुद्धिवर्धन एवं हितोपदेश इत्यादि माना है। भामह[ii] के अनुसार उत्तम काव्य की रचना से कीर्ति और प्रीति के साथ–साथ पुरुषार्थचतुष्ट्य और सकल कलाओं में निपुणता प्राप्त करना बताया है। वामन[iii] प्रीति एवं कीर्ति को काव्य का प्रयोजन मानते हैं तो आनन्दवर्धन[पअ] प्रीति को ही काव्य का प्रमुख प्रयोजन मानते हैं। आनन्दवर्धन के मत का समर्थन अभिनवगुप्त[v] करते हैं, वे कहते हैं कि– "तथापि तत्र प्रीतिरेव प्रधानम्" कहकर अपना भी मत प्रकट करते हैं। आचार्य धनंजय[अप] ने रूपकों का मूल प्रयोजन आनन्दोपत्ति ही स्वीकार किया है।

आचार्य मम्मत[vii] ने उपर्युक्त सभी मतों का समन्वयक करते हुए सर्वप्रथम काव्य के छः प्रयोजन बताए जिसका परवर्ती आचार्यों पर व्यापक प्रभाव पड़ा, किन्तु मम्मत की विशेष दृष्टि भी छः परिनिर्वृति (प्रीति) पर ही है। उन्होंने आनन्दानुभूति को सकल प्रयोजन मौलिभूत कहा। मम्मत ने काव्य के प्रयोजनों में यश की प्राप्ति, अर्थ की प्राप्ति, व्यवहारज्ञान, रसानुभूति एवं कान्तासम्मित उपदेश के अतिरिक्त अमंगल नाशरूपी नवीन काव्य प्रयोजन की कल्पना की है। विश्वनाथ[viii] के अनुसार शास्त्र से पुरूषार्थों की प्राप्ति दुःखमय है और सबके लिए सम्भव नहीं है किन्तु काव्य के माध्यम से चतुर्वर्ग की प्राप्ति सुःखसाध्य है। पण्डितराज जगन्नाथ[ix] कीर्ति, परमाह्लाद, गुरु, राजा एवं देवताओं के प्रसन्नता, विद्या, धन–लाभादि को काव्य प्रयोजन मानते हैं।

पण्डितराजोत्तर आचार्यों में काव्य प्रयोजन सम्बन्धी विचार प्रायः उदासीन दिखाई देते हैं। फिर भी कुछ आचार्यों ने काव्य प्रयोजन सम्बन्धी विचार–धार को आगे बढ़ाने का प्रयास बनाए रखा है जिसका मैं संक्षेप में विवेचन कर रहा हूँ–

आचार्य राजचूडामणि ने मम्मत के काव्य प्रयोजनों में ही अपनी आस्था रखी है वे कहते हैं कि–

काव्यं हि यशसेऽथार्थ शिवेतरनिवृत्तये।
कान्तावदुपदेशाय परनिर्वृतये क्षणात्।।[x]
एवं राजादिविषयकोचितोपचारादिपारेज्ञानं च प्रयोजनमूह्यम्।

श्रीकृष्णकवि[गप] मम्मत के छः प्रयोजनों में से पाँच प्रयोजन ही अंगीकार करते हैं। उन्होंने मम्मत के 'व्यवहारविदे' प्रयोजन का उल्लेख नहीं किया है। आचार्य विद्याराम कित्र्यादि रूप फल की प्राप्ति ही काव्य का प्रयोजन बताते हैं–

कित्र्यादिफलदं काव्यमिति पूर्वविदो विदुः।[xii]

यहाँ पर "कित्र्यादि" में आदि पद के अभिप्राय को आचार्य ने वृत्तिभाग में भी स्पष्ट नहीं किया। मेरा मानना है कि उनका अभिप्राय मम्मत के ''काव्यं यशसे'' इत्यादि छः प्रयोजनों से रहा होगा।

आचार्य अच्युतराय के मतानुसार काव्य से स्वार्थ तथा अन्यार्थ दोनों की सिद्धि होती है। स्वार्थ से तात्पर्य है धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। इन चारों पुरुषार्थों से क्रमशः कीर्ति, सम्पत्ति, तृप्ति और मुक्ति अन्यार्थ निर्धारित किया गया है–

काव्यादिस्वार्थमन्यार्थं चाथ स्वार्थश्चतुर्विधः।
धर्मादिः कीर्तिसम्पत्तितृप्रिमुक्तिवपुः क्रमात्।।[xiii]

आचार्य अच्युतराम सहृदय की दृष्टि से काव्यप्रयोजन रूप अन्यार्थ पर विचार करते हुए कहते हैं कि काव्य से सामाजिक को अर्थादि ऐहिक तथा धर्मादि आमुष्मिक पदार्थों का उपदेश (ज्ञान) प्राप्त होता है–

जिज्ञासोः सुन्दरीरीत्या काव्यं समुपदेशकृत।
ऐहिकामुष्मिकादेर्यत्सोऽयमन्वार्थ उच्चते।।[xiv]

"कान्तावदुपदेशाय" को स्पष्ट करते हुए अच्युत राय यह मानते हैं कि जिस प्रकार सुन्दरी अपने लावण्यादि एवं पातिव्रत्यादि सद्गुणों के द्वारा अपने स्वामी के हृदय को वशीभूत करके नम्रतादि साधन के द्वारा अर्थ और कामरूप लौकिक तथा धर्म और मोक्ष रूप वैदिक पदार्थों का उपदेश देती है उसी प्रकार काव्यादि भी सहृदय के मन को वशीभूत करके उन्हें कल्याणकारी पदार्थों की ओर संकेत कर देता है–

सुन्दरी स्वेशहृदयं वशीकृत्य स्वसद्गुणैः।
लौकिकं वैदिकं चापि कुजतीष्टं ससाधनम्।।
तद्वद् काव्याद्यपि श्रीमन्यहारामायणादिकम्।
श्रोतुर्मनो वशीकृत्य हितं वक्ति सहेतुकम्।।[xv]

आचार्य ने सहृदय सामाजिक की दृष्टि से समुपदेश के अतिरिक्त काव्य का प्रयोजन माना है–सुख–प्राप्ति। यथा–

अथं सर्वत्र सुखदः श्रवणेऽनुष्ठितावपि।
तद्गुणाद्यैः रसोत्पत्तेः फले त्विष्टार्थसिद्धितः।।[xvi]

यदि हम आचार्य अच्युतराम के पुरुषार्थ चतुष्ट्य और मम्मत के प्रयोजन षट्क को ध्यानपूर्वक देखते हैं तो ज्ञात होता है कि अच्युतराय ने धर्म और अर्थ का लक्षण यश और सम्पत्ति ही स्वीकार किया है। जहाँ तक "व्यवहारविदे" का प्रश्न है, व्यवहार ज्ञान से धर्मज्ञान ही विवक्षित है क्योंकि मम्मत ने इसकी वृत्ति "राजादिगतोचिताचारपरिज्ञानम्" में उचित और आचार पद का सन्निवेश किया है। 'उचित आचार' पद का संकेत धर्म की ओर ही है। 'शिवेतरक्षतये' और 'सद्यः परनिर्वृतये' इन दोनों से मुक्ति ही विवक्षित है अथवा इन्हें काम पुरूषार्थ में भी अन्तर्भूत माना जा सकता है। इस प्रकार यह कव्य प्रयोजन भी मामह, वामन, रूद्रत, मम्मत, हेमचन्द्र, विश्वनाथ एवं पण्डितराजजगन्नाथ इत्यादि प्राचीन आचार्य सम्मत है।

छज्जूराम शास्त्री विद्यासागर भी मामहसम्मत पुरूषार्थचतुष्ट्य एवं कीर्ति तथा प्रीति ही काव्यप्रयोजन बताते हैं–

धर्मस्यार्थस्य कामस्य मोक्षस्यापि प्रयोजकम्।
कीर्तिप्रीतिकरं चाह भायहः काव्यसेवनम्।।[xvii]

बदरीनाथ झा ने काव्य के प्रयाजन को दो दृष्टि से बताया है–प्रचम है कवि की दृष्टि जिसमें कीर्ति, पुरूषार्थचतुष्ट्य एवं कलुष–निवृत्ति की गणना होती है तथा द्वितीय है सहृदय की दृष्टि जिसमें ज्ञान–प्राप्ति, आनन्दानुभूति एवं असम उपदेश की गणना होती है–

तस्य फलं निर्मातुः कीर्तिचतुर्वर्गकलुषमोषाद्यम्।
प्रतिपत्तुर्विज्ञानं निर्वृतिरसमोपदेशश्च।।[xviii]
आचार्य हरिदाससिद्धान्तवागीश काव्य का प्रयोजन आनन्दमात्र मानते हैं–
"प्रयोजनमानन्दः काव्यस्य।"[xix]

आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी कवि की दृष्टि काव्य को निष्प्रयोजन एवं सप्रयोजन दोनों ही मानते हैं। निष्प्रयोजन के उदाहरण में वे कहते हैं कि महर्षि–वाल्मीकि ने रामायण की रचना बिना किसी प्रयोजन के की थी, क्योंकि उस महर्षिजनों का कर्म तो निसर्गतः फलासक्तिवर्जित होता है।[गग] जहाँ तक कवि की दृष्टि से काव्य के सप्रयोजन के सम्बन्ध में आचार्य का कहना है कि काव्य से मम्मत प्रतिपादित प्रयोजनों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रयोजन सम्भव हैं। यथा–(1) युगावश्यकतापूर्ति (2) स्वधर्मरक्षण (3) राष्ट्रदेवप्रबोध इत्यादि।[गगप] युगावश्यकतापूर्ति के उदाहरण में वे कहते हैं कि कालिदास ने रघुवंश की रचना उस समय में की थी जब भारत विदेशियों का आक्रमण हो रहा था। उनके इस महाकाव्य की रचना का उद्देश्य था कि देश में रघु के समान वीर को पुनः कैसे प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार स्वधर्मरक्षण के उदाहरण के सम्बन्ध में कहते हैं कि जब यवन शासन काल में हिन्दू धर्म का ह्रास होने लगता तो तुलसीदास ने अपने धर्म की रक्षा एवं पुनरूत्थान के लिए रामचरितमानस काव्य की रचना की। राष्ट्रदेवप्रबोध के सम्बन्ध में आचार्य का कहना है कि स्वयं भरतमुहिन ने नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में कहा है कि विदेशाी आक्रमणकारियों के कारण भारत का स्वत्व विलकुल समाप्त हो गया था और उसे वेद पर आधारित नाटकों, नृत्यों आदि के द्वारा पुनः प्रतिष्ठित किया गया।

आचार्य रेवा प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि सहृदय की दृष्टि से काव्य सदैव सप्रयोजक होता है। वे काव्य की तुलना मातृदुग्ध से करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार माता का दुग्ध, शिशु के गुण और अवगुण का विचार किये बिना ही स्तनन्धय शिशु को दुग्धरस से परिपुष्ट करता है, उसी प्रकार काव्य भी रसिक व्यक्ति को पुरूषार्थरूपी अमृत का आस्वादन कराता है–

न स्यात् प्रयोजनं स्याद् वा कवेः सामाजिकस्य तु।
मातृस्तन्यं यथा काव्यं हन्त सर्वार्थसाधनम्।।[xxii]

निष्कर्ष के रूप में हम उपर्युक्त आचार्यों के मतों को देखने के बाद कह सकते हैं कि कुछ आचार्य प्राचीन आलंकारिकों के समान काव्य को कवि एवं सहृदय दोनों की दृष्टियों से सप्रयोजक मानते हैं इसमें भी कुछ आचार्यों का झुकाव पुरूषार्थ चतुष्ट्य की ओर है तो अन्यों का प्रयोजन षट्क की ओर। इन दोनों के विपरीत कुछ आचार्य कवि की दृष्टि से काव्यप्रयोजन की अनिवार्यता स्वीकार नहीं करते हैं वे कविन्दृष्टि से काव्य को निष्प्रयोजन एवं सप्रयोजन दोनों ही मानते हैं।

सन्दर्भः–

---

1. उत्तमाधममध्यानां नरायणां कर्मसंश्रयम्।
2. हितोपदेशजननं धृति–क्रीडा–सुखादिकृत।।
3. दुःखार्तानां क्षमार्त्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
4. विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति।।
5. धर्म्थं यशस्यमापुस्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्।
6. लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।। (ना.शा. 1/113, 115, 116)
7. धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
8. करोति कीर्ति प्रीतिं च साधुकाव्यनिबन्धनम्।। (काव्यलंकार 1.2)
9. काव्यं सद् दृष्टादृष्टार्थं प्रीतिकीर्तिहेतुत्वान् (काव्यलंकारसूत्र पृ. 2)
10. तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम् (ध्वन्यालोक 1/1)
11. काव्ये रसयिता सर्वो न बोद्धा न नियोगभाक् (ध्वन्यालोक लोचन पृ. 65)
12. आनन्दनिस्यन्दिषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धिः।
13. योऽपीतिहासादिवदाह साधुतस्मै नमः स्वादुपराङ्मुखाय।। (दशरूपक 1–6)
14. काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
15. सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मितयोपदेशपुजे।। (का.प्र. पृ. 10)
16. चतुर्वर्गफल प्राप्तिः सुखादल्पधियामपि (साहित्यदर्पण पृ. 02)
17. तस्य कीर्तिपरमाह्लादगुरूराजदेवताप्रसादाद्यनेकप्रयोजनकस्य
18. काव्यस्य.. (रसगंगाधर, पृ. 12)
19. काव्यदर्पण पृ. 5–6
20. गप. काव्यं हि यशसेऽथार्थ शिवेतरनिवृत्तये।
21. कान्तावदुपदेशाय परनिर्वृतये क्षणात्।। (मन्दारमरन्दचम्पू पृ. 186)
22. रसदीर्धिका पृ. 55
23. साहित्यसार पृ. 3
24. वही पृ. 5
25. वही पृ. 6
26. वही पृ. 3
27. साहित्य बिन्दु पृ. 8
28. साहित्य मीमांसा पृ. 11
29. काव्यकौमुदी पृ. 1
30. प्रयोजनं कवेः काव्ये नापि किंचन दृश्यते।
31. चुड्कृतौ कलविड्कस्य यथा प्राभातिके क्षणे।।
32. एषणात्रित्रितयोन्तीर्णे रामायणमहाकवौ।
33. आत्माविष्कारनैष्कर्म्यनैसर्गी किं प्रयोजनम्।। (काव्यलंकारकारिका, पृ. 24–25)
34. वही पृ. 31